ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 285-287

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

शीर्षक–नाटक में संगीत और काव्य

निहारिका चतुर्वेदी Email : aaryvrat2013@gmail.com

Received- 28.06.2020, Revised- 01.07.2020, Accepted - 04.07.2020

सारांश– ***प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृत साहित्य के नाटकों में संगीत और काव्य की प्रचुरता एवं उसके सार्थकता का वर्णन किया गया है। संस्कृत नाटकों में गद्य संवाद के अतिरिक्त पद्य का प्रयोग भी बहुलता से मिलता है। संस्कृत नाटकों से ही लेकर यूनानी, पाश्चात्य तथा हिन्दी नाटकों में गीतों का प्रयोग शुरू हुआ।***

कुंजीभूत शब्द–निर्वहन, वृत्ति, आविर्भाव, वातावरण, अस्वाभाविक।

एसोसिएट प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, एस0आर0के (पी0जी0) कॉलेज फिरोजाबाद (उ0प्र0) भारत

अनुरूपी लेखक

भारतीय आचार्यों ने नाटक को दृश्य–काव्य कहा है, और रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने पर ही उसकी सार्थकता मानी है। रंगमंच पर उपस्थित किये जाने पर नाटक वाणी के वर्चस्व के साथ अपने को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये गायन, वादन का भी सहारा लेता है। आचार्य भरत की धारणा है कि नाटक में संवाद, गायन और वादन, अलात चक्र की भाँति परस्पर समन्वित होने चाहिए। नाटक के अभिव्यंजना विधान में गायन और वादन को आधार भूमि के रूप में स्वीकारा गया है, जिस पर रचना का पूरा विधान खड़ा होता है। भरत ने नृत्य को नाटक का शोभादायक धर्म माना है। परन्तु यह शोभा का विधान नाटक की मूल भाव–धारा को दृष्टि में रखते हुए ही होना चाहिए। भरत ने नाटक का मूल प्रयोजन रस निष्पत्ति अर्थात् सामाजिकों को भाव–विशेष में विभोर करना माना है।

नाटक में गद्य–संवाद के अतिरिक्त प्राचीन नाटककारों ने पद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि आजकल नाटकीय संवाद में पद्य के प्रयोग को अस्वाभाविक और अनुचित माना गया है। अभिनव भरत ने भी उसका निषेध किया है, किन्तु नाटककार को यह स्वंतत्रता तो है कि वह ऐसे पात्रों की योजना करे, जो कविता में ही वार्तालाप करते हैं या कवि हों या कवियों का उहारण देते हों जैसे अभिनव भरत ने अपने 'मंगल प्रंभात' नाटक में मेघराज कवि की सृष्टि करके उसका प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी पात्र हो सकते हैं जो किसी दूसरे कवि की रचनाओं को उन्मादावस्था में अपना मानते हों। काव्योल्लेख करते हुए 'साहित्य दर्पण कार' ने 'छन्दो बद्ध पद पद्यम्' अर्थात् विशिष्ट छन्द में बँधे हुए पद को ही पद्य कहा है। यह छन्द लघु, गुरू स्वरया मात्रा की नियमित वर्ण योजना से बनते है।

नाटक में गीत प्रयोग को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। आधुनिक लेखक आलोचक गीत प्रयोगों को अनावश्यक वस्तु समझते हैं, परन्तु नाटकों में गीत–प्रयोग से एक विशिष्ट कवित्व–गति का समावेश हो जाता है। गीत किसी स्थिति विशेष में घटना–पात्र की अकुरूपता से प्रतिफलित न हों किन्तु उनकी अन्तर्धारा मंचस्थ घटना–पात्र तथा मंच से परे बाह्य जगत के बीच अद्भुत सामरस्य की सृष्टि करती हो। अरस्तू ने तो गीतों को नाटक का अविभाज्य अंग मानकर उसे तत्व माना है। उनके पोयटिक्स मे गीतों को 'कोरस' की संज्ञा दी गयी है। ग्रीक नाटकों में वृन्द–गान करने वाले अनेक व्यक्ति होकर भी समूह में आने के कारण एक पात्र के रूप में माने गये है।

अरस्तू ने वृन्दगान के अनेक भेद बताये है– पैरोड, स्टैसिया आदि । ग्रीक नाटकों में प्रयुक्त वृन्द गान मात्र अलंकरण नहीं था। वह नाटकों में कतिपय आवश्यक कर्तव्यों की पूर्ति करता है। वह मूल कथानक को प्रकाशित करता है, वर्तमान की आलोचना करता है, तथा भविष्य के सम्बन्ध में पूर्व सूचना देता है। वह एक ओर तो नाटक कार की अभिव्यक्ति का माध्यम है तो दूसरी और प्रेक्षक की प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। नाटक से उत्पन्न सामाजिक के मन पर पड़े प्रभाव, प्रतिबिम्बों का संकलन और संतुलन करता है। वह अपने काव्य–तत्व द्वारा विलाप और रूदन को संगीत में तथा त्रास और भय को शांति में बदल देता है। इस प्रकार कभी वह वातावरण की सृष्टि करता है, कभी विरोध प्रकट करता है, तो कभी उद्विग्न प्रेक्षकों को साँस लेने का अवसर देता है।

गीतों के सम्बन्धम में दो सिद्धान्त

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

निश्चित रूप से समझ लेने चाहिए। एक तो 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' प्रत्येक वस्तु अपने–अपने स्थान और अवसर पर सुन्दर लगती है। दूसरे यह देखना चाहिये कि जिस स्थान पर गीत अधिक आकर्षक स्वाभाविक और उपयुक्त हों वही उसका विधान करना चाहिये। नायक के वियोग में नायिका का और नायिका के वियोग में नायक का राग अलापना, परस्पर मिल ने पर दोनों का संगीतमय वार्तालाप करना, किसी इष्ट के निधन पर गीत गाकर रोना आदि ऐसे अनुपयुक्त और अस्वाभविक प्रसंग है जहाँ गीत का प्रयोग करने से सामाजिकों का मनोरंजन भले ही होता हो, किन्तु संगीत और नाट्य कला की हत्या हो जाती है। ठीक प्रकार से रसानुभूति होने में भी बाधा पड़ती है। अतः नाट्क कार का केवल वहीं गीत का विधान करना चाहिये, जहाँ वह नाट्य वस्तु की आवश्यकता के अनुकूल हो, जैसे महाकवि कालिदास ने 'मालविकागिन मित्रम्' में किया है, क्योंकि वहाँ मालविका का गीत और नृत्य नाटकीय वस्तु में सहायता देने वाला है।

भारतीय संगीत में सात स्वर यथा षड्ज, मध्यम, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद माने गये है। नाटकीय प्रयोग में स्वरों के चार संयोग यथावादी, संवादी, विवादी और अनुवादी स्वीकार किये गये है। इन स्वर संयोगों को 'ग्राम' संज्ञा दी गयी है। अनेक प्रकार के स्वर ग्रामों को लेकर, विभिन्न रागों की सृष्टि मानी गयी है। प्रत्येक राग की तीन अवस्थायें ग्रह, अंश और न्यास माने गये हैं। राग का आरम्भ ग्रह से होता है, बीच के विस्तृत भाग को अंश कहते है, और उसकी परिसमाप्ति न्यास से मानी जाती है। राग के सन्दर्भ में आरोही, अवरोही स्थायी और संचारी चारवर्णों की भी चर्चा की गयी है। इन चारों की संयोजना से राग का उद्बोधन होता है। यह संयोजना जिस मनोहर स्वरूप को उत्पन्न करती है उसे अंलकार कहा गया है। अंलकारों के सहारे गीत का अविर्भाव होता है। गीत में ताल लय और गति का विधान होता है। आचार्य भरत के अनुसार नाटक में कथा प्रवाह के बीच–बीच में किसी भाव दशा को सक्रियता प्रदान करने तथा उसे अधिक से अधिक बोध गम्य बनाने के लिये गीतों की योजना होनी चाहिये। इस प्रसंग में उन्होने 'ध्रुवागीति' का विस्तार के साथ विवेचन किया है। स्वर वर्णो का उपयुक्त चयन, प्रसंग के अनुरूप अलंकारों के प्रयोग और शारीरिक भंगिमा से समन्वित गायन से 'ध्रुवागान का आविर्भाव माना गया है।

ध्रुवागान के प्रकार प्रावेशिकी, नैष्कामिकी, आक्षेपिकी और अन्तरा माने गये हैं। प्रावेशिकी का प्रयोग रंगमंच पर पात्रों के प्रवेश के साथ होता है। नैष्कामिकी का प्रयोग किसी अंक के मध्य में अन्त में अथवा नाटक की परिसमाप्ति पर, पात्रों के निष्क्रमण काल में किया जाता है। नाटक के प्रदर्शन में प्रवहमान प्रस्तुत रस का उल्लंघन करके अन्य रस का प्रयोग किया जाता है, तो उसके साथ आक्षेपिकी ध्रुवा गान का प्रयोग होता है। प्रवहमान लय के भंग होने पर यथा स्थिति उत्पन्न करने के लिये प्रासदिकी ध्रुवा गान उपयोग में लायी जाती है। किसी पात्र के मूर्च्छित होने, क्रोधित हो जाने अथवा उसके वस्त्र एवं आभरणों के अव्यवस्थित हो जाने पर इस अव्यवस्था को आवृत्त करने के लिये अन्तरा का आन्तरी ध्रुवा गान प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार ध्रुवागानों के विभिन्न प्रकारों का उपयोग कथा–प्रवाह में अवतरित भाव, रस, काल, ऋतु एवं देश को दृष्टि में रखकर किया जाता है। भारतीय नाटकों में गायन के साथ विभिन्न वाद्य–यन्त्रों का प्रयोग भी आवश्यक माना जाता है। वाद्य चार प्रकार के माने गये हैं– तत, अवनद्ध, सुशिर और घन, जिनके उदाहरण के रूप में क्रमशः वीणा मृदंग, वंशी और झाल के नाम दिये जा सकते हैं। इन वाद्य–यत्रों को बजाने के लिये अलग–अलग प्रकार की प्रणालियाँ उपयोग में लायी जाती हैं। इन वाद्य–यन्त्रों के प्रयोग से गायन का प्रभाव संवर्द्धित हो जाता है। गायक जिस ताल और लय का प्रयोग करता है, वादक उसी का अनुसरण करते हैं। इन दोनों के संयोग से नाट्य–प्रदर्शन सम्मोहक हो जाता है। आचार्य भरत ने इस सम्मोहन की अधिकता के लिये यथावसर नृत्य के प्रयोग का भी परामर्श दिया है। इस प्रसंग में उन्होनें नृत्य के विभिन्न प्रकारों, उनसे संबन्धित आंगिक चेष्टाओं की भी विस्तृत चर्चा की है। संस्कृत के अनेक नाटकों में हम गायन–वादन के साथ नृत्य का भी समुचित प्रयोग देखते है। नाट्याचार्यों ने चार वृत्ति की योजना भी है, जिनमें से केवल कौशिकी वृत्ति के नाटकों में ही गीत, वाद्य तथा नृत्य का अधिक आयोजन करने का विधान किया था। आरभटी वृत्ति के नाटकों में हिंसा अधिक होती है, इसीलिए उसमें गीत योजना निषिद्ध है। रस या प्रभाव के अनुरूप गीत की शब्द योजना करना दूसरा तत्व है और तदनुकूल राग या ताल में बाँधना भी उसका आवश्यक तत्व है।

पश्चिम में नाट्य–कला का उद्भव यूनान के सम्मानित देवता 'डॉयोनिसस' के सामने उपस्थित किये जाने वाले वृन्द गान से माना जाता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में 'थैसपिस' नामक कवि ने वृन्दगान के गायक मण्डल के एक व्यक्ति को अलग कर उसे अभिनय का कार्य प्रदान किया था। गायक मण्डल तो कथा का गायन करता था, और वह व्यक्ति एक के बाद दूसरे मुखौटे धारण कर अलग–अलग पात्रों की भूमिका का निर्वहन करता था, तथा अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा दृश्यात्मक रूप प्रदान करता था। 'सॉफोक्लीज' के नाटकों के साथ यूनान की नाट्य परम्परा में गायक–मण्डल का प्रवेश गीत आता है, जिसमें वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण किया जाता है। अंत में गायक मण्डल विदा गीत उपस्थित करता है। इस प्रकार यूनानी नाटकों में भी संगीत की परम्परा

PIF-7.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-III, Issues-18, YEAR- Dec. -2020

उपलब्ध होती है। गीताश्रित नाटकों जैसे नृत्य नाट्य (डान्स वाले ऑपेरा) ओर (मैलो ड्रामा) आदि में भी गीतों का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के नाटकों में भारतेन्दु से लेकर प्रसाद तक के सभी नाटकों में गीतों का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्षतः नाटकों में गीतों के प्रयोग का अत्यधिक महत्व है। संस्कृत नाटकों से लेकर यूनानी, पाश्चात्य और हिन्दी नाटकों तक गीतों के प्रयोग उपलब्ध होते है, परन्तु ये गीत अवसरानुकूल होने चाहिये। पर्व, राज्यभिषेक, महोत्सव, पुत्र जन्म तथा सभी मांगलिक अवसरों पर गीत और नृत्य का प्रयोग किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी नाट्य शास्त्र भाग 2, पृष्ठ 341.
2. हिन्दी नाट्य शास्त्र भाग 2, पृष्ठ 343–46.
3. अभिनव नाट्य शास्त्र पृष्ठ 496.
4. Lyrics may not present a direct commentary, on or an immediate impose to the events or to the declarations of the characters, but an undertone that repeats their theme in dependently and in so doing chaws into significant relation both the out ward action often play and the surrounding universe both. The frontiers of drama P.G 101, Una FIlis Fermor.
5. अभिनव नाट्य शास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी पृष्ठ सं0 97–98.
6. भरत और भारतीय नाट्य कला पृष्ठ सं0 4667 The Essential The Atre P.N 42.
8. Ibid P.N 42.
9. द्रष्टव्ये नाट्य नृत्येच पर्व काले विशेषतः। नृत्रं त्वत्त नरेन्द्राणा मभिषेके महोत्सव।। या त्रयां देव यात्तायां विवाहे प्रिय संगमें। नगराणामगाराणां प्रदेश पुत्र जन्मनि। शुभार्थिभिः प्रयोक्तव्यं माडक्यं सर्वकर्म सु।। अभिनद दर्पण नंदिकेश्वर से अभिनव नाट्य शास्त्र में उद्धृत, पृ0 सं0 535.

*****